International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 518-520

भारतीय सन्दर्भ में ''ताम्र पाषाण कालीन समाजिक और आर्थिक स्थिति''

गुंजन बैस
प्राचीन इतिहास संस्कृति, एवं पुरातत्व विभाग, डॉ0 राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

नव पाषाण युग के अन्तिम चरण में तांबे नाम धातु का उपयोग प्रारम्भ हुआ। अतएव पाषाण युग के पश्चात् 'धातु युग' का प्रारंभ होना अनुमानित है। यद्यापि ताम्र युग में तांबे के हथियार उपकरण व्यवहार में लाए गए, तथापि पत्थर के पूर्व प्रचलित हथियारों का भी उपयोग होता रहा है अतएव ताम्रयुग को ताम्रपाषाणिक काल भी कहा जाता हैं।

भारत के विभिन्न भागों में अनेक ताम्रपाषाणिक स्थल प्रकाश में आए है। राजस्थान में आहार[1] और गिलुंड़[2] गुजरात में जोखा, धनवा और प्रभास पाटन मध्य प्रदेश में बेसनगर कायथा[3], महेश्वर और नवदाटोली व महाराष्ट्र में जोर्वे[4], नासिक, नेवासा बहल और सोनगाँव[5] इत्यादि।

विगत चार दशको में मध्य गंगा घाटी में किए गए पुरातात्विक अन्वेषणों से ताम्र पाषाणिक संस्कृति के बहुत से स्थल प्रकाश में आए है। इन स्थलों से उत्तरी पूर्वी भारत में ताम्र पाषाणिक संस्कृति का एक नया अध्याय प्रकाश में आया। इन स्थलों में उल्लेखनीय स्थल है। उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जनपद में पुरादेव, जानी, पेजवोध, और भेलवानी[6]। जौनपुर में एकहुआ वाराणसी में राजघाट[7], प्रहलादपुर सरायमोहना, कमौली, गाजीपुर में मसोनडीह, आजमगढ़ में राजानहुस का टीला, बस्ती में बनवारी घाट गुलरहिया घाट, लहुरादेव[8], सुसीपार, रामगढ़ घाट, बड़ा गॉव, और गेरार, बलिया में खैराडीह, भूनाडीह गोरखपुर में सोहगौरा[9], नरहन व इमलीडीह तथा बिहार के सारन जनपद में चिरांद और मांझी पटना जनपद में मानेर, भागलपुर में ओरिअप और चम्पा वैशाली जनपद में चेचर कुतुबपुर, गया जनपद में सोनपुर तथा ताराडीह और रोहतास जनपद में सेनुआर।

इन स्थलों मे से राजघाट प्रहलादपुर सरायमोहना, कमौली मसोनडीह, सोहगौरा, नरहन, इमलीडीह, भूनाडीह, धुरियापार, खैराडीह, चिरांद मांझी, मनेर, ओरिअप चम्पा, चेचर, कुतुबपुर, सोनपुर, ताराडीह और सेनुआर में उत्खनन हुआ। कौशाम्बी तथा श्रृंग्वेरपुर का प्राचीनतम् सांस्कृतिक धरातल भी पात्र परंपराओं के आधार पर ताम्र पाषाणिक संस्कृति के अन्तर्गत रखा जा सकता है। मध्य गंगा घाटी के दक्षिणवर्ती विन्ध्य क्षेत्र के उत्खनित स्थलों ककोरिया और कोल्डिहवा से मध्य गंगा घाटी के ताम्र पाषाण संस्कृति के न केवल उद्भव पर ही प्रकाश पड़ा है, अपितु दोनों के पारस्परिक सांस्कृतिक सम्पर्क भी उजागर हुए है।[10]

मध्य गंगा के मैदानों के ताम्रपाषाण कालीन एक दर्जन से अधिक पुरास्थलों की खुदाई हो चुकी है। चिरांद, चेचर, कुतुबपुर और मनेर के ताम्रपाषाण कालीन स्वरूप मध्य गंगा बेसिन के भीतरी भागों में है। वे गंगा सोन, गंडक और घाघरा के संगम पर दोमट और बलुई मिट्टी वाले स्थानों पर मिलती है। जहां बाढ़ के कारण जंगल साफ करना आसान था। सोहगौरा का ताम्र पाषाण कालीन आवास राप्ती और आमी नदियों के संगम पर झूँसी गंगा यमुना के संगम पर और हेतापट्टी गंगा और मनसैता के संगम के पास स्थित है।[11] इन सभी स्थानों में पत्थर के औजार कम संख्या में मिले है। यहॉ पत्थरों के अत्यन्त छोटे फलक और लघु पाषाण कालीन उपकरण मिले है, जिनका प्रयोग अनाज उपजाने में बहुत कम हो सकता है। इन स्थानो पर हिरण की सींग और अन्य प्रकार के हड्डी के बने औजारों की बहुतायत। ताराडीह और सेनुआर के ताम्र पाषाण कालीन परिसर और सोनपुर की ताम्र पाषाणकालीन बस्ती पहाड़ी इलाकों के पास थी। यह उल्लेखनीय है। कि ताराडीह और सोनुपर की सबसे पुरानी बस्तियां बलुई मिट्टी पर बसी मालुम पड़ती है।[12] जहाँ घनी वनस्पतियां नही रहीं होगी। भागलपुर जिले में अवस्थित ओरिअप की ताम्र पाषाण कालीन बस्ती पत्थरघट्टा की पहाड़ियों से सटे कहलगांव के नजदीक थी।

पश्चिम तथा मध्य भारत में स्थित ताम्र पाषाण कालीन बस्तियों तथा मध्य गंगा घाटी में स्थित ताम्र पाषाण कालीन बस्तियों के विद्यमान रहने और वीरान होने में परस्पर अंतर दृष्टिगत होता है। पश्चिम और मध्य भारत के ताम्रपाषाण बस्तियों को छोड़कर लोग अन्यत्र चले गये किन्तु मध्य गंगा घाटी में ऐसा नहीं हुआ। पश्चिमी और मध्य भारत के एक दर्जन से अधिक ताम्रपाषाण कालीन स्थलों से इस बात के स्पष्ट संकेत मिले है कि वहां संस्कृति की श्रृंखला सहसा टूट गई। 500 से 1000 वर्षो तक ये स्थल उजाड़ पड़े रहे। पुनः पाँचवी और तीसरी शताब्दी ई0पू0 में यहां लोग फिर से आ बसे। सम्भवतः इन स्थानों की मिट्टी की उर्वरता समाप्त हो चुकी थी। और तब तक लोहा और उसकी प्रौद्योगिकी का ज्ञान नहीं था। इसलिए बस्तियां नहीं टिक सकी और न फैल सकीं। मध्य गंगा बेसिन में लोगों को इन परिस्थितियों का सामना नहीं करना पड़ा इसलिए यहा अनेक ताम्र पाषाणकालीन बस्तियां विकसित हुई और लौह युग का लाभ उठाकर फूलती फलती रहीं।

ताम्र पाषाणिक स्थल मध्य गंगा की घाटी में छोटी अथवा बड़ी नदियों के तट पर या धनुषाकार झीलों के किनारे स्थित है। इन स्थलों का अधिवास प्रायः छोटे अथवा मध्यम आकार का है। विस्तृत उत्खननों के अभाव में अधिवास नियोजन सम्बन्धी प्रमाण अपेक्षाकृत कम प्राप्त हुए है। किन्तु बांस–बल्ली के निशान ये युक्त जली मिट्टी के टुकड़ों और गोलाकर झोपड़ियों के फर्शो के प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस काल में लोग झोपड़ियों में ही निवास करते थे।[13] दीवालों का निर्माण बांस–बल्ली से किया जाता था तथा इसके ऊपर मिट्टी का मोटा लेप लगाया जाता था स्तम्भगर्त के प्रमाण भी ऐसा ही संकेत देते है। उल्लेखनीय है कि मध्य गंगा घाटी के दक्षिण की विन्ध्य क्षेत्र की ताम्र पाषाणिक संस्कृति के उत्खनित स्थलों काकोरिया और कोल्डिहवा से भी मिट्टी के दीवालों के प्रमाण उपलब्ध हुए है।

मध्य गंगा घाटी की ताम्र पाषाणिक संस्कृति में जैसा कि पूर्व में भी उल्लिखित है। चाक पर बने हुए रेड वेयर, ब्लैकऐंड रेड वेयर और ब्लैक स्लिप्ड वेयर से युक्त धरातल प्राप्त होते है। ब्लैक ऐंड रेड

वेयर और ब्लैक स्लिप्ड वेयर के पात्रों पर हल्के सफेद, क्रीमों भूरे और कभी–कभी लाल रंग के भी बर्तनों के भीतरी और बाहरी सतह पर रेखीय चित्र बनाये गये है। इसके अतिरिक्त अभी तक आसंजन विधि से उत्कीर्ण और रस्सी की छाप से बर्तनों को अलंकृत किया गया है। सोहगौरा, तारडीह, नरहन, अगियावीर से बर्तनों के पक जाने के बाद उत्कीर्ण करके अलंकरण बनाने के प्रमाण प्राप्त हुए है।[14] विभिन्न प्रकार के बर्तन छिछले और गहरे कटोरे, होठयुक्त अथवा साधार कटोरे, तस्तरियों, नाद, छोटे अथवा बड़े गले के घड़े हॉडी, लोटों के आधार के घड़े, हैंडिल युक्त कड़ाही आदि उपलब्ध हुए है। बर्तनों के विभिन्न प्रकारों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि इनका प्रयोग बड़े पैमाने पर किया जाता था। पूर्ववर्ती नव पाषाणिक संस्कृति की तुलना में ये अधिक विकसित तकनीक से बने हुये है और अच्छी तरह से पके हुये है।

मध्य गंगा घाटी के ताम्र पाषाणिक मानवों ने अपने उपकरणों के निर्माण के लिए तांबें, हड्डी, हिरण, सिंह और पत्थरों का प्रयोग किया। यह उल्लेखनीय है कि तांबे का प्रयोग अपेक्षाकृत कम हुआ है। क्योकि तांबे को गलाने की भट्टी के स्पष्ट प्रमाण कहीं से भी प्राप्त नहीं हुये है। अतएव ऐसा कहा जा सकता है। कि ये लोग तांबे के उपकरणों का निर्माण स्वयं करते थे। अथवा ये उपकरण बाहर से लाये जाते थें। लघु पाषाण उपकरण तथा पत्थर के अन्य उपकरणों के लिए इस क्षेत्र का ताम्र पाषाणिक मानव विन्ध्य क्षेत्र पर निर्भर था। उक्त दोनो क्षेत्रों के ताम्र पाषाणिक संस्कृति के अन्य अवयवों से भी दोनों के पारस्परिक आदान प्रदान, के प्रमाण, उपलब्ध हुए है।[15] इस संस्कृति का मानव, मनके, लटकन, चूड़ियां, छल्ले कुण्डल आदि आभूषणों का प्रचुर मात्रा में उपयोग करता था। चर्ट, कार्नेलियन, क्वार्टज, मिट्टी, हड्डी, सीप, क्वांस स्टीएटाइट एंव तांबे आदि के बने हुये मनके भी निर्माण की विभिन्न अवस्थाओं में मिलते है। इससे कहा जा सकता है कि इनका निर्माण इन्हीं स्थलों पर किया गया होगा।

ताम्र पाषाण कालीनयुगों में तांबे की अपेक्षा पत्थर और हड्डी के औजारों का अधिक महत्व था। ताम्र पाषाण काल में ताबें की इतनी कमी तथा हड्डी और पत्थर की इतनी बहुतायत है कि इसे अस्थि पाषाण युग कहना अधिक समचीन होगा। उत्तरी काली पालिशदार पात्र परम्परा वाले स्तरों में प्राप्त हड्डियों की वस्तुओं और शलाकाओं से पता चलता है। कि लोहे के प्रयोग के प्रारंभ होने के बाद भी हड्डी का व्यवहार होता रहा।[16] ताम्रपाषाण काल में हड्डियों के औजारों का उपयोग ज्यादातर शिकार के लिए होता था। इनका खेती की जमीन खोदने के लिए बहुत कम इस्तेमाल होता था। कछारी मैदानों में पत्थर के औजार आसानी से नहीं मंगाऐ जा सकते थे। किन्तु भोजन के लिए हिरण या दूसरे जानवरों का शिकार करना आसान था। उनकी सींगों और हड्डियों से औजार भी बनाये जा सकते थे।

नरहन, प्रहलादपुर, मनेर तथा ताराडीह में ताम्र पाषाण चरण में तांबे के औजार बहुत कम मिले हैं ताबें की वस्तुओं में वाणाग्र और शलाकांए प्रमुख है। पत्थर और हड्डी की अपेक्षा खुदाई के लिए तांबे का इस्तेमाल अधिक कारगर होता है। अब तक कि खुदाई में औजार कम मिले है। मध्य गंगा के मैदानों में रहने वाले ताम्र पाषाण कालीन लोगों को कांसे के औजारों का ज्ञान नही था लेकिन वे वाणाग्र में कोटर बनाने की कला में दक्ष थे। खैराडीह में हड्डी और तांबे के कोटर वाले वाणाग्र मिले है।[17]

कई ताम्र पाषाणिक स्थलों पर आवासीय जमाव दो मीटर तक बहुत अधिक है। इससे प्रतीत होता है कि इन स्थलों पर ताम्र पाषाणिक मानव लम्बे समय तक रहा है। और यह इनके स्थाई अधिवास के प्रमाण है। इन स्थलों से प्राप्त कुछ अस्थि अवशेषों और वनस्पतिक अवशेषों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मध्य गंगा घाटी का ताम्र पाषाणिक मानव कृषक तथा पशुपालक था।[18] किन्तु उसे संभवतः मांसाहार के लिए आखेट और मछली पकड़ने का कार्य करना पड़ता था। कृषि द्वारा उत्पादित अनाजों में चावल, जौ, तीन प्रकार के गेहूँ मटर मूँग सरसों तथा अन्य तिलहन सम्मिलित थे। कटहल, अंगूर और तुलसी जैसी वनस्पतियों के भी प्रमाण प्राप्त होते हैं। इन स्थलों से कूबड़ युक्त बैल, भैसे, भेड़, बकरी, कुत्ता, और सुअर के अतिरिक्त विभिन्न प्रजातियों के हिरण भी प्राप्त हुए है। हिरण मछली, कछुए और पक्षियों की हड्डियों भी प्राप्त हुई है।

ताम्रपाषाण काल वाले चरण में ताराडीह में चावल, जौ, मसूर, काली मटर, चना, बाजारा, हरा चना और छोटी मटर भी पैदा होती थी।[19] 1000 ई0पू0 से पहले के काल में इमलीडीह खुर्द के निवासी तांबें और ऐसे लाल बरतनों का प्रयोग करते थें जिन पर रस्सी दबाने के निशान मौजूद है। ये लोग धान, गेहूँ जौ, ज्वार, बाजरा, के अलावा मटर, हरा चना, कुनिया केराव और ढेलवा केराव की खेती करते थे।

समाजिक जीवन के नियमों व्यवस्थाओं तथा मान्यताओं में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। वस्तुतः उत्तर पाषाण कालीन सामाजिक जीवन ही अभी भी अवस्थित था। धार्मिक विषयों में अभी भी प्रकृति का दैवीय रूप, भूतादि में विश्वास तथा चट्टानों, पर्वतों वृक्षाओं आदि की पूजा प्रमुख रही होगी। आर्थिक तथा उद्योग धन्धों के क्षेत्र में पर्याप्त विकास एवं प्रगति हुई।

उपसंहार

इस प्रकार ताम्र पाषाण युग में आर्थिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुएं। ताबें के आविष्कार ने उत्पादन में वृद्धि ला दी। हल बैल, जुए, पहिए, नाव आदि के ज्ञान से उत्पादन बढ़ा, विनियम का प्रसार हुआ एंव व्यक्तिगत स्वामित्व की भावना विकसित हुई। कबीले से राज्य की ओर अग्रसर होने की प्रक्रिया भी आरंभ हुई। अंततः ''ताम्र पाषाण युगीन ग्राम्य संस्कृतियों'' ने लौह युगीन शहरी सभ्यता की पृष्ठभूमि तैयार कर दी।

संदर्भ

1. राय, एच0पी0, 1989, इनसाइक्लोपीडिया ऑफ इंडियन आर्कियोलॉजी, संपा0 ए0 घोष, दो जिल्द, मुंशीराम मनोहर लाल, नई दिल्ली, खण्ड–1, पृ0 5–6
2. लाल, बी0बी0, 1989, इनसाइक्लोपीडिया ऑफ इंडियन आर्कियोलॉजी, जिल्द–1, पृ0 150–51
3. धावलीकर, एम0के0, 1989, इनसाइक्लोपीडिया ऑफ इंडियन आर्कियोलॉजी, पृ0 217–20
4. राय, एच0पी0, 1989, इनसाइक्लोपीडिया ऑफ इंडियन आर्कियोलॉजी, पृ0 188
5. धावलीकर, एम0के0, 1989, इनसाइक्लोपीडिया ऑफ इंडियन आर्कियोलॉजी, पृ0 416–17
6. पाल, जे0एन0, 1987, प्रतापगढ़ जनपद में पुरातात्विक सर्वेक्षण मानव में प्रकाशित, पृ0 203.
7. नारायण, ए0के0 और राय, टी0एन0, 1977, एक्सकवेशन एट राजघाट, वाराणसी।
8. चतुर्वेदी, एस0एन0, 1985, एडवांस ऑफ विन्ध्यन नियोलिथिक एण्ड चाल्कोलिथिक कल्चर इन दी हिमालयन तराईः एक्सकेवैशन एण्ड एक्सप्लोटेशन इन द सरयूपार रीजन ऑफ उत्तर प्रदेश, मैन एण्ड इन्वायरन्मेन्ट नं0 9, पृ0 101–108.
9. चतुर्वेदी, एस0एन0 और प्रेम सागर, 1977, अर्ली पाटरी फ्राम सोहगौरा, इण्डियन प्रीहिस्ट्री, 1980, सम्पा0 मिश्र, बी0डी0 एवं

पाल, जे0एन0 पृ0 300–303.
10. सिंह, पुरूषोत्तम, 2010, आर्कियोलॉजी ऑफ द गंगा प्लान, पृ0 115
11. चतुर्वेदी, एस0एन0 1985, एविडेन्स ऑफ विंध्य नियोलिथिक एण्ड चाल्कोलिथिक कल्चर्स इन दि हिमायलन तराई, मेन एण्ड इनवायरनमेंट, IX 1985, पृ0 103.
12. सिन्हा, बी0पी0 और बी0एस0 वर्मा, 1977, सोनपुर एक्सकैवेशंस, 1956 और 1959–1962, पुरातत्व और संग्रहालय निदेशालय, बिहार, पटना, 1977, पृ0 18
13. सिंह, पुरूषोत्तम, 2010, आर्कियोलॉजी ऑफ द गंगा प्लान, पृ0 113–114
14. सिंह, पुरूषोत्तम, 2010, आर्कियोलॉजी ऑफ द गंगा प्लान, पृ0 114–116
15. पाल, जे0एन0 1995, चाल्कोलिथिक विन्ध्याज : प्राग्धारा नं0 5, पृ0 13–19
16. इंडियन आर्कियोलॉजी रिपोर्ट, 1982–83, पृ0 16
17. इंडियन आर्कियोलॉजी रिपोर्ट, 1982–83, पृ0 92–93
18. सिंह, पुरूषोत्तम, 2010, आर्कियोलॉजी ऑफ द गंगा प्लान, पृ0 184–186
19. शर्मा, राम शरण, 1989, मध्य गंगा क्षेत्र में राज्य की संरचना, पृ0 18